जैनागमों का व्याख्या-साहित्य

डॉ. जिनेन्द्र जैन

जैन आगमों पर पाँच प्रकार का व्याख्या-साहित्य उपलब्ध है— १. निर्युक्ति २. भाष्य ३. चूर्णि ४. टीका ५.टब्बा एवं हिन्दी आदि भाषाओं में विवेचन। निर्युक्ति एवं भाष्य की रचना प्राकृत भाषा में हुई है। चूर्णि संस्कृतमिश्रित प्राकृत भाषा में लिखी गई है। टीकाएँ पूर्णतः संस्कृत भाषा में हैं। टब्बा गुजराती एवं राजस्थानी मे हैं। इसके अनन्तर हिन्दी, अंग्रेजी और गुजराती में अनुवाद एवं विवेचन हुए हैं। जैन विश्वभारती लाडनूँ के जैनागम विद्वान् डॉ. जिनेन्द्र जी ने निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि एवं टीका— इन चार विधाओं के व्याख्या साहित्य से प्रस्तुत लेख में परिचित कराया है। —**सम्पादक**

जैन परम्परा में आगम-साहित्य का वही स्थान है जो वैदिक परम्परा में वेद का तथा बौद्ध परम्परा में त्रिपिटक का। आप्त वचन के रूप में महावीर की सुरक्षित वाणी ही आगम साहित्य है। इन आगमों में न केवल धर्म, दर्शन, अध्यात्म का विवेचन किया गया है, बल्कि ज्ञान-विज्ञान के ये अक्षय कोश कहे जाते हैं। समाज, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, खगोल, पर्यावरण, आर्थिक चिन्तन सहित धर्म, दर्शन, न्याय जैसे विभिन्न विषय इसमें समाहित हैं।

जैन आगमों को अंगप्रविष्ट एवं अंगबाह्य इन दो भागों में विभाजित किया जाता है। द्वादशांग अंगप्रविष्ट के अन्तर्गत तथा शेष अंगबाह्य के अंतर्गत परिगणित हैं। आगमों का प्राचीनतम वर्गीकरण अंग एवं पूर्व के रूप में स्वीकार किया जाता है। आर्यरक्षित ने चार अनुयोगों में सम्पूर्ण आगम को विभाजित किया। आचार्य समन्तभद्र ने भी अनुयोग के आधार पर आगमों का विभाजन किया है। लेकिन अंग, उपांग, मूल एवं छेद यह उत्तरवर्ती वर्गीकरण है। जैन परम्परा में आगमों की संख्या ३२, ४५ एवं ८४ मानी गयी है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार अंग आगम उपलब्ध नहीं हैं। श्रुत परम्परा के नष्ट होने से उनका किसी को भी ज्ञान शेष नहीं रहा। श्वेताम्बर परम्परा में मूर्तिपूजक सम्प्रदाय ४५ आगमों को तथा स्थानकवासी एवं तेरापंथ सम्प्रदाय ३२ आगमों को स्वीकार करते हैं।

जैन आगम सूत्रबद्ध होने से उनको व्याख्यायित करना अति आवश्यक था। आगम संकलन के साथ ही आचार्यों ने व्याख्या साहित्य लिखना प्रारम्भ कर दिया था। सर्वप्रथम आचार्य भद्रबाहु नें दश आगम ग्रंथों पर प्राकृत पद्यबद्ध निर्युक्ति साहित्य लिखा। तत्पश्चात् अन्य आचार्यों ने निर्युक्तियों एवं स्वतंत्र आगमों पर भाष्य लिखे। भाष्य भी प्राकृत पद्यबद्ध हैं। इसके बाद चूर्णि, टीका ग्रंथ भी व्याख्या साहित्य के रूप में लिखे गए, जिनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) निर्युक्ति साहित्य

निर्युक्ति शब्द को परिभाषित करते हुए आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यकनिर्युक्ति(गाथा ८२) में कहा है– **'निज्जुत्ता ते अत्था, जं बुद्धा तेण होइ निज्जुत्ती। सूत्रार्थयोः परस्परं निर्योजनं सम्बन्धनं निर्युक्तिः।'** –आ.नि.ग.टीका पत्र 100

आवश्यकचूर्णि में कहा गया है–**सुत्तनिज्जुत्तअत्थनिज्जूहणं निज्जुत्ती।**

उक्त परिभाषाओं से यही फलित होता है कि सूत्र में निर्युक्त(प्रकट/विद्यमान) अर्थ की व्याख्या करना निर्युक्ति है। आचार्य शीलांक, जिनदासगणि, कोट्याचार्य एवं अन्य टीकाकारों ने यही अर्थ निर्युक्ति का किया है। अतः शब्द का सही अर्थ प्रकट करना ही निर्युक्ति है। तत्कालीन प्रचलित शब्द के अनेक अर्थों को बताकर अंत में प्रस्तुत अर्थ का प्रकटीकरण ही निर्युक्ति का प्रयोजन है। जिसे निर्युक्तिकार ने साहित्य में निक्षेप पद्धति माना है।

'निर्युक्ति' आगमों पर प्राकृत गाथाओं में लिखा हुआ संक्षिप्त विवेचन है। इसमें विषय का प्रतिपादन करने के लिए अनेक कथानक, उदाहरण और दृष्टान्तों का उपयोग किया गया है, जिनका उल्लेख मात्र वहां मिलता है। यह साहित्य इतना सांकेतिक और संक्षिप्त है कि बिना भाष्य और टीका के सम्यक् प्रकार से समझ में नहीं आता। इसलिए टीकाकारों ने मूल आगम के साथ-साथ निर्युक्तियों पर भी टीकाएं लिखी हैं।

पिण्डनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति आगमों के मूल सूत्रों में गिनी गई है, इससे निर्युक्ति साहित्य की प्राचीनता का पता चलता है कि वलभी वाचना के समय ईस्वी सन् की पांचवी–छठी शताब्दी के पूर्व (चौथी–पांचवीं शताब्दी में) ही निर्युक्तियां लिखी जा चुकी थीं। आचार्य भद्रबाहु ही एक मात्र ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने आगम-संकलन के समय से ही निर्युक्तियां लिखना प्रारंभ कर दिया था। उन्होंने आचारांग, सूत्रकृतांग, सूर्यप्रज्ञप्ति, व्यवहार, कल्प, दशाश्रुतस्कंध, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक और ऋषिभाषित–इन दस सूत्रों पर निर्युक्तियां लिखी हैं। इनमे से सूर्यप्रज्ञप्ति और ऋषिभाषित की निर्युक्तियां अनुपलब्ध हैं। इसके साथ ही पिण्डनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्ति का भी उल्लेख मिलता है। आराधनानिर्युक्ति का उल्लेख मूलाचार (५.८२) में किया गया है।

आचारांग निर्युक्ति– आचारांग सूत्र पर आचार्य भद्रबाहु ने प्रथम श्रुतस्कन्ध के आठ अध्ययनों (सातवां व्युच्छिन्न है) और द्वितीय श्रुतस्कंध की चार चूलिकाओं (पांचवी चूलिका निशीथ निर्युक्ति के रूप में पृथक् उपलब्ध है जो निशीथभाष्य में सम्मिलित हो गई) पर ३५६ गाथाओं में निर्युक्ति लिखी है। इन पर शीलांक ने महापरिण्णा नामक सातवें अध्ययन की दस गाथाओं को छोड़कर टीका की है।

सूत्रकृतांगनिर्युक्ति–सूत्रकृतांगनिर्युक्ति में २०५ गाथाएं हैं। उसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषिभाषितसूत्र का उल्लेख है। इस ग्रंथ में गौतम (गोव्रतिक), चण्डीदेवक(चक्रधरप्राया:—टीका) वारिभद्रक(जलपान करने वाले), अग्निहोत्रवादी तथा जल को पवित्र मानने वाले साधुओं का नामोल्लेख है। क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादियों के भेद—प्रभेद गिनाए गए हैं। पार्श्वस्थ, अवसन्न और कुशील नामक निर्ग्रन्थ साधुओं के साथ परिचय करने का इसमें निषेध है।

सूर्यप्रज्ञप्तिनिर्युक्ति— परम्परानुसार भद्रबाहु ने सूर्यप्रज्ञप्ति के ऊपर निर्युक्ति की रचना की थी, लेकिन टीकाकार मलयगिरि के कथनानुसार कलिकाल के दोष से यह निर्युक्ति नष्ट हो गई है, इसलिए उन्होंने केवल सूत्रों की ही व्याख्या की है।

बृहत्कल्प, व्यवहार और निशीथनिर्युक्ति— बृहत्कल्प और व्यवहार सूत्र पर भी भद्रबाहु ने निर्युक्ति लिखी थी। बृहत्कल्पनिर्युक्ति संघदासगणि क्षमाश्रमण के लघुभाष्य की गाथाओं के साथ और व्यवहारनिर्युक्ति व्यवहार भाष्य की गाथाओं के साथ मिश्रित हो गई है। निशीथ की निर्युक्ति भी निशीथभाष्य के साथ मिल गई है।

दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति- दशाश्रुतस्कन्ध जितना लघु है उतनी ही लघु दस अध्ययनों पर निर्युक्ति लिखी गई है। निर्युक्तिकार ने आरम्भ में प्राचीनगोत्रीय अन्तिम श्रुतकेवली तथा दशा, कल्प और व्यवहार के प्रणेता भद्रबाहु को नमस्कार किया है। दशा, कल्प और व्यवहार का यहां एक साथ कथन है। आठवें अध्ययन की निर्युक्ति में पर्युषणकल्प का व्याख्यान है। परिवसण, पज्जुसण, पज्जोसमण, वासावास, पढमसमोसरण, ठवणा, जेट्ठोग्गह (ज्येष्ठग्रह) इन पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया गया है।

उत्तराध्ययननिर्युक्ति—उत्तराध्ययन सूत्र पर भद्रबाहु ने ५५९ गाथाओं में निर्युक्ति की रचना की है। उत्तराध्ययन के पूरे सभी छत्तीस अध्ययनों पर निर्युक्ति लिखी गई है। इस निर्युक्ति में गंधार श्रावक, तोसलिपुत्र, आचार्य स्थूलभद्र, स्कन्दपुत्र, ऋषि पाराशर, कालक तथा करकंडू आदि प्रत्येक बुद्ध तथा हरिकेशी, मृगापुत्र आदि की कथाओं का उल्लेख किया है, आठ निह्नवों का विस्तार से विवेचन है। भद्रबाहु के चार शिष्यों द्वारा राजगृह में वैभार पर्वत की गुफा में शीत—समाधि ग्रहण किए जाने तथा मुनि सुवर्णभद्र के मच्छरों का घोर उपसर्ग (मशक—परिपीत—शोणित=मच्छर जिनके शोणित को पी गए हों) सहन कर कालगत होने का कथन है। कम्बोज के घोड़ों का उल्लेख है। कहीं—कहीं मनोरंजक उक्तियों के रूप में मागधिकाएं भी मिल जाती हैं।

आवश्यकनिर्युक्ति— आवश्यकसूत्र में प्रतिपादित छह आवश्यकों का यहां विवेचन है। सर्वप्रथम हरिभद्रसूरि ने इस पर शिष्यहिता नाम की वृत्ति लिखी। उनका अनुसरण करके भट्टारक ज्ञानसागर सूरि ने अवचूर्णि की रचना की,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो मानविजय द्वारा संशोधित होकर सेठ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार कोश, सूरत से १९६५ में प्रकाशित की गई। तत्पश्चात् मलयगिरि द्वारा रचित आवश्यक निर्युक्ति टीका तीन भागों में प्रकाशित हुई। माणिक्यशेखर सूरि ने आवश्यक निर्युक्ति दीपिका लिखी(तीन भागों में प्रकाशित)। और भी अनेक अवचूर्णियां इस निर्युक्ति पर लिखी गई। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण द्वारा रचित विशेषावश्यक-भाष्य एक स्वतन्त्र ग्रंथ है, फिर भी इसे आवश्यकनिर्युक्ति का भाष्य कहा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस निर्युक्ति पर विपुल साहित्य की रचना की गई।

दशवैकालिकनिर्युक्ति– दशवैकालिक पर भद्रबाहु ने ३७१ गाथाओं की निर्युक्ति लिखी है। निर्युक्ति और भाष्य की गाथाएं मिश्रित हो गई हैं। दशवैकालिक सूत्र में प्रतिपादित द्रुमपुष्पिका आदि सभी दस अध्ययनों पर निर्युक्ति की रचना की गई है। इसमें अनेक लौकिक और धार्मिक कथानकों तथा सूक्तियों द्वारा सूत्रार्थ का स्पष्टीकरण दिया गया है। हिंगुशिव, गंधविका, सुभद्रा, मृगावती, नलदाम और गोविन्दवाचक आदि की अनेक कथाएं यहां वर्णित हैं। इन कथाओं का प्रायः नामोल्लेख ही निर्युक्ति-गाथाओं में उपलब्ध होता है, इन्हें विस्तार से समझने के लिए चूर्णि अथवा टीका की शरण लेना आवश्यक है।

ऋषिभाषितनिर्युक्ति– भद्रबाहु द्वारा रचित 'ऋषिभाषित' नामक ग्रंथ पर लिखी गई निर्युक्ति अनुपलब्ध होने से उसके विषय में जानकारी प्राप्त नहीं है।

(२) भाष्य साहित्य

निर्युक्ति की भांति भाष्य भी प्राकृत गाथाओं में संक्षिप्त शैली में लिखे गए हैं। बृहत्कल्प, दशवैकालिक आदि सूत्रों के भाष्य और निर्युक्ति की गाथाएं परस्पर अत्यधिक मिश्रित हो गई हैं, इसलिए अलग से उनका अध्ययन करना कठिन है। निर्युक्तियों की भाषा के समान भाष्यों की भाषा भी मुख्य रूप से अर्धमागधी ही है, अनेक स्थलों पर मागधी और शौरसेनी के प्रयोग भी देखने में आते हैं। इस साहित्य में मुख्य छन्द आर्या है।

भाष्यों का समय सामान्य तौर पर ईस्वी सन् की लगभग चौथी—पाँचवी शताब्दी माना जा सकता है। भाष्यसाहित्य में विशेष रूप में निशीथभाष्य, व्यवहारभाष्य और बृहत्कल्पभाष्य का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है। इस साहित्य में अनेक प्राचीन अनुश्रुतियां, लौकिक कथाएं और निर्ग्रन्थों के परम्परागत प्राचीन आचार–विचार की विधियों आदि का प्रतिपादन है। जैन श्रमण-संघ के प्राचीन इतिहास को सम्यक् प्रकार से समझने के लिए उक्त तीनों भाष्यों का गम्भीर अध्ययन आवश्यक है। संघदासगणि क्षमाश्रमण, जो वसुदेवहिण्डी के कर्ता संघदासगणि वाचक से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिन्न हैं, कल्पलघुभाष्य और पंचकल्पभाष्य के कर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने भी कुछ आगम ग्रंथों पर भाष्य लिखे हैं, कुछ संघदासगणिकृत तथा कुछ जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण द्वारा भाष्य लिखे गये हैं। आगमों पर लिखे गये प्रमुख भाष्य हैं—

१. बृहत्कल्प लघुभाष्य २. बृहत्कल्प बृहत्भाष्य(यह अपूर्ण है, तीसरे अपूर्ण उद्देशक तक प्राप्त), ३. महत् पंचकल्पभाष्य ४. व्यवहार लघुभाष्य ५. व्यवहार बृहत्भाष्य (अप्राप्त) ६. निशीथ लघुभाष्य ७. निशीथ बृहत्भाष्य (अप्राप्त) ८. विशेषावश्यक महाभाष्य ९. जीतकल्प १०. उत्तराध्ययन ११. आवश्यकसूत्रमूलभाष्य १२. आवश्यक सूत्रभाष्य, १३. ओघनिर्युक्ति लघुभाष्य १४. ओघनिर्युक्ति महाभाष्य १५. दशवैकालिक भाष्य १६. पिण्डनिर्युक्ति भाष्य।

महाकाय भाष्यों (महाभाष्यों) की संख्या आठ है—विशेषावश्यक, बृहत्कल्पलघु, बृहत्कल्पबृहत्, पंचकल्प, व्यवहारलघु, निशीथलघु, जीतकल्प और ओघनिर्युक्तिमहाभाष्य। महाभाष्य दो प्रकार से लिखे गए हैं- १. जिन पर लघुभाष्य नहीं, सीधे निर्युक्ति पर स्वतंत्र महाभाष्य, जैसे विशेषावश्यक—महाभाष्य और ओघनिर्युक्ति महाभाष्य २. लघुभाष्य को लक्ष्य में रखकर महाभाष्य, जैसे बृहत्कल्पभाष्य (यह महाभाष्य अपूर्ण है)। निशीथ और व्यवहार पर भी महाभाष्य लिखे गए थे, लेकिन वे अनुपलब्ध हैं।

निशीथ लघुभाष्य— निशीथ, कल्प और व्यवहार भाष्य के प्रणेता संघदासगणि माने गए हैं, जो वसुदेवहिण्डी के रचयिता संघदासगणिवाचक से भिन्न हैं। निशीथ लघु—भाष्य की अनेक गाथाएं बृहत्कल्पलघु-भाष्य से मिलती हैं। यह भाष्य बीस उद्देशों में ६७०३ गाथाओं में लिखा गया है। सर्वप्रथम पीठिका में ससं, एलासाढ, मूलदेव और खण्डा नाम के चार धूर्तों की मनोरंजक कथा दी गई है, जिसका आधार अज्ञातकर्तृक धुत्तक्खाणग (धूर्ताख्यानक) नामक ग्रन्थ बताया गया है। भाष्य में यह कथा अत्यन्त संक्षेप में दी गई है, जिसे चूर्णिकार ने विस्तृत रूप से दिया है। आगे चलकर यह हरिभद्रसूरि के धुत्तक्खाणग नामक कथाग्रन्थ का आधार बना। कथा कहानियों आदि के माध्यम से साधुओं के आचार—विचार संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन यहां उपलब्ध होता है।

व्यवहार भाष्य—निशीथ और बृहत्कल्पभाष्य की भांति व्यवहारभाष्य भी परिमाण में काफी बड़ा है। मलयगिरि ने इस पर विवरण लिखा है। व्यवहारनिर्युक्ति और व्यवहारभाष्य की गाथाएं परस्पर मिश्रित हो गई हैं। इस भाष्य में दस उद्देशकों में आलोचना, प्रायश्चित्त, गच्छ, पदवी, विहार, मृत्यु, उपाश्रय, प्रतिमाएं आदि विषयों को लेकर साधु-साध्वियों के आचार—विचार, तप, प्रायश्चित और प्रसंगवश देश—देश के रीतिरिवाज आदि का वर्णन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें आलोचना आदि पदों की व्याख्यापूर्वक शुद्ध भाव से आलोचना करना, क्षिप्तचित्त और दीप्तचित्त साधुओं की सेवा–सुश्रूषा करना, साधुओं के विहार की विधि, साधु–साध्वियों को अपने सगे–संबंधियों के घर से आहार आदि ग्रहण करने की विधि का विधान, अन्य समुदाय से आने वाले साधु--साध्वियों को अपने समुदाय में लेने के नियमों का विवेचन तथा उनके शयन, बाल दीक्षा–विधि आदि का विवेचन किया गया है।

बृहत्कल्प लघुभाष्य–संघदासगणि क्षमाश्रमण इस भाष्य के रचयिता हैं। बृहत्कल्प के सूत्रों का इसमें विवेचन किया गया है। पीठिका के अतिरिक्त यह छह उद्देशकों में विभक्त है। बृहत्कल्प–लघुभाष्य की पीठिका में ८०५ गाथाएं हैं, जिनमें ज्ञानपंचक, सम्यक्त्व, सूत्रपरिषद्, स्थंडिलभूमि, पात्रलेप, गोचर्या, बसति की रक्षा, वस्त्रग्रहण, अवग्रह, विहार आदि का वर्णन है। स्त्रियों के लिए भूयवाद (दृष्टिवाद) पढ़ने का निषेध है। इसमें श्रावकभार्या, साप्तपदिक, कोंकणदारक, नकुल, कमलामेला, शंब का साहस और श्रेणिक के क्रोध की कथाओं का वर्णन है।

बृहत्कल्प–बृहद्भाष्य– यह भाष्य अधूरा ही उपलब्ध है। इस भाष्य में पीठिका और प्रारम्भ के दो उद्देशक पूर्ण हैं, और तीसरा उद्देशक अपूर्ण है। बृहत्कल्प– लघुभाष्यगत विषयों का ही यहां विस्तृत विवेचन किया गया है।

जीतकल्पभाष्य– जीतकल्पभाष्य पर जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का स्वोपज्ञ भाष्य है। यह भाष्य वस्तुतः बृहत्कल्प लघुभाष्य, व्यवहार भाष्य, पंचकल्प महाभाष्य और पिण्डनिर्युक्ति आदि ग्रंथों की गाथाओं का संग्रह है। इनमें पांच ज्ञान, प्रायश्चित्त स्थान, भक्तपरिज्ञा की विधि, इंगिनीमरण और पादोपगमन का लक्षण, गुप्ति-समिति का स्वरूप, ज्ञान-दर्शन-चारित्र के अतिचार, उत्पादना का स्वरूप, ग्रहणैषणा का लक्षण, दान का स्वरूप आदि विषयों का प्रतिपादन किया है। यहां क्रोध के लिए क्षपक, मान के लिए क्षुल्लक, माया के लिए आषाढ़भूति, लोभ के लिए सिंहकेसर, मोदक के इच्छुक क्षपक, विद्या के लिए बौद्ध उपासक, मन्त्र के लिए पादलिप्त और मुरुण्डराज, चूर्ण के लिए क्षुल्लकद्वय और योग के लिए ब्रह्मद्वीपवासी तापसों के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।

उत्तराध्ययनभाष्य– शान्तिसूरि की पाइयटीका में भाष्य की कुछ ही गाथाएं उपलब्ध होती हैं। अन्य भाष्य की गाथाओं की भांति इस भाष्य की गाथाएं भी निर्युक्ति के साथ मिश्रित हो गई हैं। इनमें बोटिक की उत्पत्ति तथा पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक नाम के जैन निर्ग्रन्थ साधुओं के स्वरूप का प्रतिपादन है। इसमें केवल 45 गाथाएं हैं।

आवश्यकभाष्य– आवश्यक सूत्र पर मूलभाष्य, भाष्य और विशेषावश्यक महाभाष्य लिखे गए हैं। इस सूत्र की निर्युक्ति में १६२३ गाथाएं हैं, जबकि भाष्य में कुल २५३ गाथाएं उपलब्ध होती हैं। यहां भी भाष्य और निर्युक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की गाथाओं में मिश्रण हुआ है। विशेषावश्यक भाष्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने लिखा है, जो आवश्यकसूत्र के केवल सामायिक नामक प्रथम अध्ययन पर है। इसमें ३६०३ गाथाएं हैं। कालिकश्रुत में चरण–करणानुयोग, ऋषिभाषित में धर्मकथानुयोग और दृष्टिवाद में द्रव्यानुयोग के कथन हैं। महाकल्पश्रुत आदि का इसी दृष्टिवाद से उद्धार हुआ बताया गया है। कौण्डिन्य के शिष्य अश्वमित्र को अनुप्रवादपूर्व के अन्तर्गत नैपुणिक वस्तु में पारंगत बताया है। निह्नवों और करकण्डू आदि प्रत्येकबुद्धों के जीवन का यहां विस्तार से वर्णन है।

दशवैकालिक भाष्य— दशवैकालिकभाष्य की ६३ गाथाएं हरिभद्र की टीका के साथ दी हुई हैं। इनमें हेतुविशुद्धि, प्रत्यक्ष, परोक्ष तथा मूलगुण और उत्तरगुणों का प्रतिपादन है। अनेक प्रमाणों से जीव की सिद्धि की गई है। लौकिक, वैदिक तथा सामयिक (बौद्ध) लोग जीव को जिस रूप में स्वीकार करते थे उसका उल्लेख विस्तार से किया गया है।

पिण्डनिर्युक्तिभाष्य—पिण्डनिर्युक्ति पर ४६ गाथाओं का भाष्य है, जिसमें पिण्ड, आधाकर्म, औद्देशिक, मिश्रजात, सूक्ष्मप्रभृतिका, विशोधि, अविशोधि आदि श्रमणधर्म विषयक संक्षिप्त विवेचन है। यहां पाटलिपुत्र के राजा चन्द्रगुप्त और उसके मन्त्री चाणक्य का उल्लेख है।

ओघनिर्युक्ति लघुभाष्य— ओघनिर्युक्ति के भाष्य में ३२२ गाथाओं में ओघ, पिण्ड, व्रत, श्रमणधर्म, संयम, वैयावृत्त्य, गुप्ति, तप, समिति, भावना, प्रतिमा, इन्द्रियनिरोध, प्रतिलेखना, अभिग्रह, अनुयोग, कायोत्सर्ग, औपपातिक, उपकरण आदि का विवेचन है। धर्मरुचि आदि के कथानकों और बदरी आदि के दृष्टान्तों द्वारा तत्त्वज्ञान को समझाया गया है। ज्योतिष आदि का प्रयोग भी साधु किया करते थे। इसमें अनेक कथानकों, साधु के आचार एवं लौकिक धर्म में निर्वहन हेतु प्रसंगों का वर्णन किया गया है।

ओघनिर्युक्ति बृहत्भाष्य—ओघनिर्युक्ति-लघुभाष्य में प्रतिपादित विषयों को यहां विस्तार से समझाया गया है। ग्रन्थ के भाष्यकार के संबंध में कोई जानकारी नहीं मिलती। यह भाष्य अप्रकाशित है।

पंचकल्प महाभाष्य— यह भाष्य पंचकल्पनिर्युक्ति के व्याख्यान के रूप में लिखा गया है। इसमें पंचकल्प-लघुभाष्य का भी समावेश हो जाता है। जैसे पंचकल्पनिर्युक्ति कल्पनिर्युक्ति का ही अंश है, वैसे ही पंचकल्पभाष्य बृहत्कल्पभाष्य का ही अंश है। इस भाष्य के कर्ता संघदासगणि क्षमाश्रमण हैं। इसमें २६६६ गाथाओं में पांच प्रकार के कल्पों का संक्षिप्त विवेचन है। मुनि पुण्यविजयजी द्वारा तैयार कराई गई इस भाष्य की प्रतिलिपि रोमन लिपि में इण्डोलोजिया, बेरोलिनेन्सिस ५ से १९७७ में प्रकाशित हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३)चूर्णि साहित्य

आगमों के ऊपर लिखे हुए व्याख्या-साहित्य में चूर्णियों का स्थान बहुत महत्त्व का है। चूर्णियां गद्य में लिखी गई हैं। चूर्णियां केवल प्राकृत में ही न लिखी जाकर संस्कृत मिश्रित प्राकृत में लिखी गई थीं, इसलिए भी इस साहित्य का क्षेत्र निर्युक्ति और भाष्य की अपेक्षा अधिक विस्तृत था। चूर्णियों में प्राकृत की प्रधानता होने के कारण इसकी भाषा को मिश्र प्राकृत भाषा कहना सर्वथा उचित ही है। निशीथ के विशेषचूर्णिकार ने चूर्णि की निम्नलिखित परिभाषा दी है–

पागडो त्ति प्राकृतः प्रगटो वा पदार्थो वस्तुभावो यत्र सः,
तथा परिभाष्यते अर्थोऽनयेति परिभाषा चूर्णिरुच्यते।

अभिधानराजेन्द्रकोश में चूर्णि की परिभाषा देखिए–

अत्थबहुलं महत्थं हेउनिवाओवसग्गगम्भीरं।
बहुपायमवोच्छिन्नं गमणयसुद्धं तु चुण्णपयं।।

अर्थात् जिसमें अर्थ की बहुलता हो, महान अर्थ हो, हेतु, निपात और उपसर्ग से जो युक्त हो, गम्भीर हो, अनेक पदों से संबंधित हो, जिसमें अनेक गम(जानने के उपाय) हों और जो नयों से शुद्ध हो, उसे चूर्णिपद समझना चाहिए।

चूर्णियों में प्राकृत की लौकिक, धार्मिक अनेक कथाएं उपलब्ध हैं, प्राकृत भाषा में शब्दों की व्युत्पत्ति मिलती है तथा संस्कृत और प्राकृत के अनेक पद्य उद्धृत हैं। चूर्णियों में निशीथ की विशेषचूर्णि तथा आवश्यकचूर्णि का स्थान बहुत महत्त्व का है। इसमें जैन पुरातत्त्व से संबंध रखने वाली विपुल सामग्री मिलती है। लोककथा और भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह साहित्य अत्यन्त उपयोगी है। वाणिज्यकुलीन कोटिगणीय वज्रशाखीय जिनदासगणि महत्तर अधिकांश चूर्णियों के कर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनका समय ईस्वी सन् की छठी शताब्दी के आसपास माना जाता है। निम्नलिखित आगमों पर चूर्णियां उपलब्ध हैं– आचारांग, सूत्रकृतांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, कल्प, व्यवहार, निशीथ, पंचकल्प, दशाश्रुतस्कन्ध, जीतकल्प, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोगद्वार।

आचारांगचूर्णि– निर्युक्ति-गाथाओं के आधार पर यह चूर्णि लिखी गई है। अतः यहां उन्हीं विषयों का विवेचन किया गया है, जिनका प्ररूपण आचारांग निर्युक्ति में उपलब्ध है। परम्परा से आचारांगचूर्णि के कर्त्ता जिनदासगणि महत्तर माने जाते हैं। यहां अनेक स्थलों पर नागार्जुनीय वाचना के साक्षीपूर्वक पाठभेद प्रस्तुत करते हुए उनकी व्याख्या की गई है। बीच बीच में संस्कृत और प्राकृत के अनेक लौकिक पद्य उद्धृत हैं। प्रत्येक शब्द को स्पष्ट करने के लिए एक विशिष्ट शैली अपनाई गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रकृतांगचूर्णि—यह चूर्णि भी निर्युक्ति का अनुसरण करके लिखी गई है। इस चूर्णि में नागार्जुनीय वाचना के जगह—जगह पाठान्तर दिये हैं। अनेक देशों के रीति रिवाज आदि का उल्लेख है। उदाहरण के लिए—सिन्धु देश में पण्णत्ति का स्वाध्याय करने का मना है। गोल्ल देश में कोई किसी पुरुष की हत्या कर दे तो वह किसी ब्राह्मणघातक के समान ही निंदनीय समझा जाता है। आर्द्रककुमार के वृत्तांत में आर्द्रक को म्लेच्छ देश का रहने वाला बताया है। आर्यदेशवासी श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार से मित्रता करने के लिए आर्द्रक ने उसके लिए भेंट भेजी थी। बौद्धों के जातकों का उल्लेख है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति चूर्णि— व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र पर यह अतिलघु चूर्णि है, जो अप्रकाशित है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति चूर्णि— जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र की चूर्णि भी अप्रकाशित है।

निशीथविशेषचूर्णि— निशीथ पर लिखी हुई चूर्णि को विसेसचुण्णि (विशेषचूर्णि) कहा गया है। इसके कर्ता जिनदासगणि महत्तर हैं। निशीथ चूर्णि अनुपलब्ध है। इसमें पिंडनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति का उल्लेख मिलता है, जिससे पता चलता है कि यह चूर्णि इन दोनों निर्युक्तियों के बाद लिखी गई है। साधुओं के आचार—विचार से संबंध रखने वाले अपवादसंबंधी अनेक नियमों का यहां वर्णन है।

साधुओं के आचार-विचार के वर्णन के प्रसंग में यहां अनेक देशों में प्रचलित रीति—रिवाजों का उल्लेख है। लाटदेश में मामा की लड़की से विवाह किया जा सकता था। मालव और सिन्धु देश के कठोरभाषी तथा महाराष्ट्र के लोग वाचाल माने जाते थे। निर्ग्रन्थ, शाक्य, तापस, गैरिक और आजीवक—इन पांचों की श्रमण में गणना की गई है। श्वानों के सम्बन्ध में बताया है कि कैलास पर्वत (मेरु) पर रहने वाले देव यक्ष रूप में (श्वानरूप में) इस मर्त्यलोक में रहते हैं। शक, यवन, मालव तथा आंध्र—दमिल का यहां उल्लेख है।

दशाश्रुतस्कंधचूर्णि— दशाश्रुतस्कंध की निर्युक्ति की भांति इसकी चूर्णि भी लघु है। यह चूर्णि भी निर्युक्ति का अनुसरण करके लिखी गई है। मूल सूत्रपाठ और चूर्णिसम्मत पाठ में कहीं—कहीं कुछ अन्तर है। यहां भी अनेक श्लोक उद्धृत हैं। दशा, कल्प और व्यवहार को प्रत्याख्यान नामक पूर्व में से उद्धृत बताया है। दृष्टिवाद का असमाधिस्थान नामक प्राभृत से भद्रबाहु ने उद्धार किया। आठवें कर्मप्रवादपूर्व में आठ महानिमित्तों का विवेचन है। प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन और आचार्य कालक की कथा उल्लिखित है। सिद्धसेन का उल्लेख मिलता है। गोशाल को भारीयगोशाल कहा है, इसका तात्पर्य है जो गुरु की अवहेलना करता है और उसके कथन को नहीं मानता। अंगुष्ठ और प्रदेशिनी (तर्जनी) उंगली में जितने चावल एक बार आ सकें, उतने ही चावलों को भक्षण करने वाले आदि अनेक तापसों का उल्लेख है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बृहत्कल्पचूर्णि— यह चूर्णि मूलसूत्र और उस पर लिखे हुए लघुभाष्य पर लिखी गई है। इस चूर्णि का प्रारंभिक अंश दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णि से बहुत कुछ मिलता है। सम्भवतः दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि बृहत्कल्पचूर्णि के पूर्व में लिखी गई है और दोनों एक ही आचार्य की रचनाएं हैं। यहां तत्त्वार्थाधिगम, विशेषावश्यकभाष्य, कर्मप्रकृति, महाकल्प और गोविन्दनिर्युक्ति का उल्लेख है।

जीतकल्प बृहच्चूर्णि— यह चूर्णि मूलसूत्र पर लिखी गई है। सिद्धसेनसूरिकृत यह चूर्णि प्राकृत में है। इसमें संस्कृत का प्रयोग नहीं किया गया है। चूर्णिकार ने आदि और अन्त में जीतकल्पसूत्र के प्रणेता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण को नमस्कार किया है। प्रस्तुत चूर्णि में एक अन्य चूर्णि का भी उल्लेख है, जो अनुपलब्ध है।

उत्तराध्ययनचूर्णि— उत्तराध्ययनचूर्णि के कर्त्ता जिनदासगणि महत्तर हैं। इन्होंने अपने धर्मगुरु का नाम वाणिज्यकुलीन, कोटिकगणीय, वज्रशाखीय गोपालगणि महत्तर तथा विद्यागुरु का नाम (निशीथविशेषचूर्णि के उल्लेखानुसार) प्रद्युम्न क्षमाश्रमण बताया है। यह चूर्णि भी निर्युक्ति का अनुसरण करके लिखी गई है। चूर्णिकार ने अपनी कृति दशवैकालिक चूर्णि का उल्लेख किया है। नागार्जुनीय पाठ का यहां अनेक स्थलों पर उल्लेख है। बहुत से शब्दों की विचित्र व्युत्पत्तियां दी हुई हैं।

आवश्यकचूर्णि—आवश्यकचूर्णि के कर्त्ता जिनदासगणि महत्तर माने जाते हैं। यह आवश्यक सूत्र में प्रतिपादित सूत्रों पर सीधे टीका नहीं है, किन्तु विशेषावश्यक की भांति आवश्यक की निर्युक्ति को आधार मान कर लिखी गई है। जहां—तहां विशेषावश्यक भाष्य की गाथाओं का व्याख्यान देखने में आता है। सूत्रकृतांग आदि चूर्णियों की भांति इस चूर्णि में केवल शब्दार्थ का ही प्रतिपादन नहीं है, बल्कि भाषा और विषय की दृष्टि से निशीथ चूर्णि की तरह यह एक स्वतंत्र रचना ज्ञात होती है।

दशवैकालिकचूर्णि (जिनदासगणिमहत्तरकृत)—दशवैकालिकचूर्णि के कर्त्ता जिनदासगणि महत्तर माने जाते हैं। यह चूर्णि भी निर्युक्ति का अनुसरण करके लिखी गई है। जिनदासगणि की प्रस्तुत चूर्णि में आवश्यक चूर्णि का उल्लेख भी मिलता है। इससे पता चलता है कि आवश्यक चूर्णि के पश्चात् इसकी रचना हुई। यहां भी शब्दों की विचित्र व्युत्पत्तियां दी गई हैं।

दशवैकालिकचूर्णि (अगस्त्यसिंह कृत)— जिनदासगणि महत्तर कृत चूर्णि की भांति यह चूर्णि भी निर्युक्ति का अनुगमन करके लिखी गई है। चूर्णि के अन्त में चूर्णिकार ने अपना नाम कलशभवमृगेन्द्र (कलश-भव— कलश से उत्पन्न अर्थात् अगस्त्य;मृगेन्द्र=सिंह) अर्थात् अगस्त्यसिंह व्यक्त किया है। अगस्त्यसिंहगणि ऋषिगुप्त क्षमाश्रमण के शिष्य थे। वे कोटिगणीय वज्रस्वामी की शाखा के आचार्य थे। स्थविर अगस्त्यसिंह का समय विक्रम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की तीसरी शताब्दी माना गया है, और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह रचना वलभी वाचना के लगभग २००—३०० वर्ष पूर्व लिखी जा चुकी थी। प्रस्तुत चूर्णि के मूल सूत्रपाठों, जिनदासगणि महत्तर कृत चूर्णि के मूल सूत्र पाठों और हरिभद्र कृत वृत्ति के मूल सूत्रपाठों में कहीं—कहीं अन्तर पाया जाता है। चूर्णि की निर्युक्ति गाथाओं के संबंध में यह भी विभिन्नता देखने में आती है कि कितनी ही निर्युक्ति गाथाएं ऐसी हैं जो हरिभद्रीय टीका में उपलब्ध हैं, किन्तु दोनों चूर्णिकारों ने उन्हें उद्‌धृत नहीं किया। प्रस्तुत संस्करण में सूत्र गाथाओं, २७० निर्युक्ति गाथाओं तथा चूर्णिगत उद्धरणों की अनुक्रमणिका दी हुई है। प्रस्तावना में अगस्त्यसिंह और हरिभद्र द्वारा स्वीकृत निर्युक्ति गाथाओं की तालिका प्रस्तुत है। अनेक वाचनान्तर, पाठभेद, अर्थभेद और सूत्र पाठों के उल्लेखों की दृष्टि से यह चूर्णि महत्त्वपूर्ण है। मुनि पुण्यविजयजी की मान्यता है कि दशवैकालिक सूत्र पर उन दोनों चूर्णियों के अतिरिक्त और भी प्राचीन चूर्णि रही होगी, जिसका उल्लेख दोनों चूर्णिकारों ने किया है।

नन्दीचूर्णि— यह चूर्णि मूल सूत्र का अनुसरण करके लिखी गई है। यहां माथुरी वाचना का उल्लेख आता है। बारह वर्षों का अकाल पड़ने पर आहार आदि न मिलने के कारण जैन भिक्षु मथुरा छोड़कर अन्यत्र विहार कर गए थे। दुर्भिक्ष होने पर समस्त साधु समुदाय आचार्य स्कंदिल के नेतृत्व में मथुरा में एकत्रित हुआ और जिसे स्मरण था, उसे कालिकश्रुत के रूप में संघटित कर दिया गया। कुछ लोगों का कथन है कि दुर्भिक्ष के समय श्रुत नष्ट नहीं हुआ था, मुख्य—मुख्य अनुयोगधारी आचार्य मृत्यु को प्राप्त हो गए थे, अतएव स्कंदिल आचार्य ने मथुरा में आकर साधुओं को अनुयोग की शिक्षा दी।

अनुयोगद्वारचूर्णि— यह चूर्णि भी मूलसूत्र का अनुसरण करके लिखी गई है। यहां तलवर, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, वापी, पुष्करिणी, सारणी, गुंजालिया, आराम, उद्यान, कानन, वन, गोपुर, सभा, प्रपा, रथ, यान, शिविका आदि के अर्थ समझाए हैं। संगीत संबंधी तीन पद्य प्राकृत में उद्धृत हैं, जिससे पता चलता है कि संगीतशास्त्र पर भी कोई ग्रन्थ प्राकृत में रहा होगा। सात स्वरों और नौ रसों का सोदाहरण विवेचन किया गया है।

अनुयोग द्वार के अंगुलपद पर लिखी हुए एक अन्य चूर्णि है, जिसके कर्त्ता सुप्रसिद्ध भाष्यकार जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण हैं। यह चूर्णि जिनदासगणि महत्तरकृत अनुयोगद्वार चूर्णि में अक्षरशः उद्धृत की गई है।

(४) टीका साहित्य

निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियों की भांति आगमों पर विस्तृत टीकाएँ भी लिखी गई हैं, जो आगम सिद्धान्त को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। ये टीकाएँ संस्कृत में हैं, कुछ टीकाओं का कथन संबंधी अंशप्राकृत में भी उद्धृत किया गया है। जान पड़ता है कि आगमों की अन्तिम वलभी वाचना के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व ही आगमों पर टीकाएं लिखी जाने लगी थीं। विक्रम की तीसरी शताब्दी के आचार्य अगस्त्यसिंह ने अपनी दशवैकालिक चूर्णि में अनेक स्थलों पर इन प्राचीन टीकाओं की ओर संकेत किया है।

टीकाकारों में याकिनीसूनु हरिभद्रसूरि (७०५–७७५ ईस्वी सन्) का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने आवश्यक, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोगद्वार पर टीकाएं लिखीं। प्रज्ञापना पर भी हरिभद्रसूरि ने टीका लिखी है। इन टीकाओं में लेखक ने कथाभाग को प्राकृत में ही सुरक्षित रखा है। हरिभद्रसूरि के लगभग सौ वर्ष पश्चात् शीलांकसूरि ने आचारांग और सूत्रकृतांग पर संस्कृत टीकाएं लिखी। इनमें जैन आचार–विचार और तत्त्वज्ञान संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन किया गया है।

आगम-साहित्य के संस्कृत टीकाकारों में जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का नाम सर्वोपरि है। अन्य टीकाओं में आवश्यकनिर्युक्ति पर हरिभद्रसूरि और मलयगिरि की उत्तराध्ययन पर वादिवेताल शान्तिसूरि और नेमिचन्द्रसूरि (आचार्यपद प्राप्ति के पूर्व अपर नाम देवेन्द्रगणि) की तथा दशवैकालिक सूत्र पर हरिभद्र की टीकाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हरिभद्र सूरि एक बहुश्रुत विद्वान् थे, जिनका नाम आगम के प्राचीन टीकाकारों में गिना जाता है। विविध विषयों पर उनके अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने आवश्यक, दशवैकालिक, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, नन्दी, अनुयोगद्वार और पिण्डनिर्युक्ति (अपूर्ण) पर टीकाएं लिखी हैं। हरिभद्र ने आवश्यक सूत्र पर दो टीकाएं लिखी हैं। यह टीका यद्यपि निर्युक्ति को आधार मान कर ही लिखी है, फिर भी जहां तहां भाष्य गाथाओं का भी उपयोग किया है। कहीं– कहीं निर्युक्ति के पाठान्तर भी दिए गए हैं। इसके कथानक प्राकृत में ही प्रस्तुत हैं।

हरिभद्रसूरि की भांति टीकाओं में प्राकृत कथाओं को सुरक्षित रखने वाले आचार्यों में वादिवेताल शान्तिसूरि, नेमिचन्द्रसूरि और मलयगिरि का नाम उल्लेखनीय है। अन्य टीकाकारों में ई.सन् की १२ वीं शताब्दी के विद्वान अभयदेवसूरि, द्रोणाचार्य, मलधारि हेमचन्द्र, मलयगिरी तथा क्षेमकीर्ति (ई.सन् १२७५), शान्तिचन्द्र (ई.सन् १५९३) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके टीकाग्रन्थ संस्कृत में प्राकृत उद्धरण सहित प्राप्त होते हैं। कुछ ग्रन्थों की भाषा प्राकृत है।

शान्तिसूरि 'कवीन्द्र' तथा 'वादिचक्रवर्ती' के रूप में प्रसिद्ध थे। मालवा के राजा भोज ने इनकी वाद-विवाद की प्रतिभा पर मुग्ध होकर इन्हें 'वादिवेताल' की पदवी प्रदान की थी। उत्तराध्ययन पर लिखी हुई इनकी टीका में प्राकृत कथानक एवं प्राकृत उद्धरणों की प्रधानता होने से उसे पाइय (प्राकृत) टीका कहा है; नेमिचन्द्रसूरि ने वादिवेताल शान्तिसूरि की पाइयटीका के आधार पर उत्तराध्ययनसूत्र पर सुखबोधा टीका की रचना की। इन्होंने भी अपनी टीका में अनेक आख्यान प्राकृत में ही उद्धृत किये हैं। टीका की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्ति में इन्होंने अपने को बृहद्गच्छीय उद्योतनाचार्य के शिष्य उपाध्याय आम्रदेव का शिष्य बताया है। अपनी इस रचना को उन्होंने अणहिल नगर (पाटन) में ईसवी सन् १०७२ में समाप्त किया। नेमिचन्द्रसूरि वादिवेताल शांतिसूरि के समकालीन थे।

आचारांग और सूत्रकृतांग पर शीलांकाचार्य की विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ हैं। अभयदेवसूरि नवांगीवृत्तिकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अंतकृद्दशा, अनुत्तरौपपातिक, प्रश्नव्याकरण, विपाक और औपपातिक सूत्र पर वृत्तियाँ लिखी हैं।

इस प्रकार आगम और उनकी व्याख्याओं के रूप में लिखे गए इस विशाल साहित्य का अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। जैन मुनियों ने अपने उपदेशों के दृष्टान्तों में इनकी कहानियों का यथेष्ट उपयोग किया है। दूसरे प्रकार की कथाएं पौराणिक कथाएं हैं, जिन्हें रामायण, महाभारत आदि ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर जैनरूप में ढाला गया है। डॉ. विण्टरनित्स के शब्दों में ''जैन टीका साहित्य में भारतीय प्राचीन कथा-साहित्य के अनेक उज्ज्वल रत्न विद्यमान हैं, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते।'' जैन आगमों के व्याख्या साहित्य की चार विधाओं के अतिरिक्त और भी विधाएं बाद में प्रचलित हुई, जो संस्कृत अथवा क्षेत्रीय भाषाओं में निबद्ध थी। यथा—अवचूरि, थेराबली, टब्बा, दीपिका, तात्पर्य, वृत्ति आदि।

—प्राकृत एवं जैनागम विभाग
जैन विश्वभारतीय संस्थान, लाडनूं (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org